[2019] 3 एस.सी.आर 697

टेक सिंह
बनाम
शशी वर्मा अन्य

(सिविल अपील सं० 1416 सन् 2019) फरवरी 04, 2019

[आर.एफ. नरीमन व विनीत सरन, न्यायमूर्ती।]

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908

धारा 115 –परंतुक (जैसा कि 1999 में संशोधन द्वारा डाला गया)– उच्च न्यायालय का पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार–दायरा– निष्कर्षः परंतुक को ध्यान में रखते हुए अंतरिम आदेशों के विरुद्ध पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार बनाए रखने योग्य नहीं है। – धारा 115 के अंतर्गत क्षेत्राधिकार का दायरा केवल क्षेत्राधिकार संबंधी त्रुटियों को सुधारने तक ही सीमित है।

आदेश 39, नियम 1– अंतर्वर्ती अनिवार्य निषेधाज्ञा – का अनुदान – मानदंड – निष्कर्षः जब अनिवार्य निषेधाज्ञा अंतरिम चरण में दी जाती है, तो प्रथम दृष्टया मामले से कहीं अधिक मामला बनता है।

अपील को स्वीकृत करते हुए न्यायालय ने कहा कि :–
1.उच्च न्यायालय ने तथ्य के समवर्ती निष्कर्षों को खारिज कर दिया और प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा निर्धारित किसी भी पहलू पर विचार किए बिना, एक पुनरीक्षण याचिका की अनुमति दी। सीपीसी में 1999 के संशोधन में एक प्रावधान धारा 115 सीपीसी जोड़ा गया। इस प्रावधान के अवलोकन से पता चलेगा कि, 1999 संशोधन के बाद, सीपीसी की धारा 115 के तहत दायर पुनरीक्षण याचिकाएं अंतरिम आदेशों के खिलाफ सुनवाई योग्य नहीं हैं। अन्यथा भी, धारा 115 सीपीसी के तहत पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग केवल क्षेत्राधिकार संबंधी त्रुटियों को ठीक करने के लिए किया जाना है। [पैरा 5, 6 तथा 7][700–बी, सी, एस] डी.एल.एफ हाउसींग एण्ड कंसट्रक्शन कंपनी प्राइवेट लि.,नई दिल्ली बनाम सरूप सिंह व अन्य [1970] एस.सी.आर 368, दोराब कावासजी वारडन बनाम कूमी सोराब वारडन व अन्य (1990) 2 एस.सी.सी. 117:[1970] 2 एस.सी.आर 332–आधार लिया।
2. जब अंतरिम स्तर पर एक आदेशात्मक निषेधाज्ञा दी जाती है, तो केवल प्रथम दृष्टया मामले से कहीं अधिक साबित करना होता है। [2019] 3 एस.सी.आर.

विधि व्यवस्था उद्धरण
[1970] 2 एस.सी.आर 368 आधार – पैरा 7
[1990] 1 एस.सी.आर 332 आधार – पैरा 8

अपीलीय क्षेत्राधिकार (सिविल): सिविल अपील संख्या 1416 सन् 2019।

सीएमपीएमओ संख्या 154 में उच्च न्यायालय, शिमला हिमाचल प्रदेश 2017 के के निर्णय और आदेश दिनांक 10.04.2018
ई. सी. अग्रवाल, राजेश कुमार, सुश्री प्राशी त्यागी, अधिवक्तागण, अपीलार्थी की ओर से।
बी.एस. बंथिया,अधिवक्ता। उत्तरदाताओं की ओर से।

न्यायालय द्वारा आदेश पारित किया गया– आर. एफ. नरीमन, न्यायमूर्ति।

1. अनुमति याचिका स्वीकृत।

2. प्रतिवादी नंबर 1 ने विशिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 6 के तहत सिविल जज, सीनियर डिवीजन, सोलन के समक्ष दिनांक 05.03.2013 को एक सिविल मुकदमा दायर किया जिसमें निम्नलिखित राहत का दावा किया गया था:

"(अ) यह घोषणा करते हुए कि वादी 28.01.2013 से आनंद कॉम्प्लेक्स, द मॉल सोलन में प्रोफार्मा प्रतिवादी नंबर 2 के स्वामित्व वाले मेसर्स ओम गारमेंट्स के नाम और शैली में दुकान नंबर 3 में व्यवसाय चला रहा था। प्रोफार्मा प्रतिवादी संख्या 2 के साथ उक्त तिथि का साझेदारी विलेख और वादी को 03.03.2013 – 04.03.2013 की मध्यरात्रि में वादी या प्रोफार्मा प्रतिवादी संख्या 2 की सहमति के बिना अवैध रूप से, गलत तरीके से बेदखल कर दिया गया है।

(बी) प्रतिवादी सं० 1 को उक्त वाद में वर्णीत परिसर/दुकान सं० 3 के किसी भी भाग में हस्तक्षेप करने पर रोक लगाने हेतु स्थायी निषेधाज्ञा।"

3. अपीलकर्ता द्वारा एक लिखित कथन दायर किया गया था जिसमें मुकदमे में दिए गए दावों को नकारते हुए कहा गया था कि वह 2004 से मकान मालकिन के किरायेदार के रूप में कब्जे में है, जो हमारे सामने प्रतिवादी नंबर 2 है।

4. मकान मालकिन ने दिनांक 05.07.2013 को एक लिखित कथन भी दायर किया जिसमें उसने कहा कि प्रतिवादी नंबर 1 के साथ की गई साझेदारी के अलावा, याचिकाकर्ता 2004 से उसका किरायेदार था। एक याचिका आदेश 39 नियम 1 के अन्तर्गत दायर किया गया था जिसे विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश दिनांकित 21.04.2015 द्वारा यह कहते हुए खारिज कर दिया गया था कि वांछित राहत इस स्तर पर नहीं दी जा सकती क्योंकि यह मुकदमे को डिक्री करने जैसा होगा। अतिरिक्त जिला न्यायाधीश के समक्ष दायर अपील मे भी यही निर्णय हुआ। अपीलीय न्यायालय द्वारा निर्णय दिनांकित 19.12.2016 में कहा गया किः "हालाँकि, जब यह प्रतिवादी नंबर 2 वाद में वर्णित दुकान की मकान मालकिन का यह कहना है कि उसने वाद में वर्णित दुकान प्रतिवादी नंबर 1/उत्तरदाता को किराए पर दी है और प्रतिवादी नंबर 1/उत्तरदाता वाद में वर्णित दुकान को वादी को किराए पर दे दिया है जो कि वादी के सभी मामले में प्रथम दृष्टया केस नही है। यह पत्रावली से स्पष्ट है कि वाद में वर्णित दुकान प्रतिवादी सं० 2 ने उत्तरदाता/प्रतिवादी संख्या 1 किराये पर दिया गया और प्रतिवादी संख्या 1 दिनांक 17.09.2004 से दुकान चला रहे हैं, जबकि दोनों प्रतिवादियों ने किराया समझौता भी लिखित रूप में तैयार किया है, जिसकी प्रतिलिपि इस वाद की पत्रावली पर उपलब्ध है। किराया समझौते के अनुसार, किरायेदारी 01.09.2004 से शुरू हुई थी। रिकॉर्ड पर कही भी यह नहीं आया है, कि प्रतिवादी नंबर 1/उत्तरदाता ने कभी मकान मालकिन के पक्ष में दुकान का कब्जा खाली/सरेंडर किया था और न ही प्रतिवादी नंबर 2 का यह मत है कि उसने कभी मुकदमे से प्रतिवादी नंबर 1 को दुकान मुकदमा से बेदखल करने की मांग की थी। आवेदक द्वारा साझेदारी विलेख की प्रतिलिपि पर विश्वास करने से ऐसा प्रतीत होता है कि आवेदक और प्रतिवादी नंबर 2 दोनों ने प्रतिवादी नंबर 1, जो सूट की दुकान पर किरायेदार है, को बेदखल करने के लिए एक–दूसरे के साथ मिलीभगत की थी और मुकदमा भी दायर किया था। इसके अलावा, जब आवेदक स्वयं इस दलील के साथ आया है कि वाद में वर्णित दुकान का कब्जा उसके पास नही है और उसने प्रार्थना की है कि अस्थायी निषेधाज्ञा के माध्यम से वाद में वर्णित दुकान पर उसके पक्ष में कब्जा बहाल किया जाए और साथ ही इस स्तर पर आवेदक यह साबित करने में असफल रहा है कि य प्रथम दृष्टया सुविधा संतुलन का मामला उसके पक्ष में है तथा उसे उसे अपूरणीय क्षति भुगतना पड़ेगा। इसलिए आवेदक द्वारा प्रार्थना के

अनुसार आवेदन की अनुमति देने से पार्टियों को प्रमुख साक्ष्य द्वारा अपने संबंधित दावों को साबित करने का मौका दिए बिना आवेदक के पक्ष में मुकदमे की डिक्री हो जाएगी। यहां तक कि जब यह रिकॉर्ड पर आ गया है कि प्रतिवादी क्रमांक 1 मुकदमे की संपत्ति पर उसका वास्तविक कब्ज़ा है, जो प्रतिवादी नंबर 2 की मकान मालकिन ने उसे वर्ष 2004 में किराए पर दिया था और रिकॉर्ड पर ऐसा कुछ भी नहीं आया है कि प्रतिवादी नंबर 1 को कभी भी वाद में वर्णित दुकान से बेदखल किया गया था या उसने खुद कभी सम्पत्ति का कब्जा प्रतिवादी संख्या 2 के पक्ष में सौंपा हो। रिकॉर्ड पर यह स्पष्ट है कि प्रतिवादी क्रमांक 1 प्रथम दृष्टया मामला है और सुविधा का संतुलन भी उसके पक्ष में है।

5. दिनांक 10.04.2018 के आक्षेपित निर्णय द्वारा, हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश ने तथ्य के समवर्ती निष्कर्षों को रद्द कर दिया और एक पुनरीक्षण याचिका की अनुमति दी। यह प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा निर्धारित किसी भी दृष्टिकोण की स्थिति लिए बिना किया गया था। निर्णय में इस्तेमाल की गई भाषा को देखते हुए, जो कुछ भी निष्कर्ष करने में सक्षम है, उससे ऐसा प्रतीत होता है कि विद्वान न्यायाधीश इस तथ्य से प्रभावित थे कि 03.02.2013 को एक पुलिस शिकायत दायर की गई थी जिसमें बेदखली को स्वीकार कर लिया गया था। हम यह देखने के लिए बाध्य हैं कि आक्षेपित निर्णय से प्रत्येक कानूनी सिद्धांत की धज्जियाँ उड़ा दी गई हैं। सबसे पहले और सबसे महत्वपूर्ण, यह है कि, सीपीसी में 1999 के संशोधन में एक प्रावधान धारा 115 जोड़ा गया जो इस प्रकार है:

> उच्च न्यायालय किसी भी मामले का रिकॉर्ड मांग सकता है जिसका निर्णय ऐसे उच्च न्यायालय के अधीनस्थ किसी न्यायालय द्वारा किया गया है और जिसमें कोई अपील नहीं है, और यदि ऐसा अधीनस्थ न्यायालय उपस्थित होता है–
>
> (ए) उस क्षेत्राधिकार का प्रयोग करना जो कानून द्वारा उसमें निहित नहीं है, या
>
> (बी) इस प्रकार निहित अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने में विफल रहा है, या
>
> (सी) अपने अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में अवैध रूप से या भौतिक अनियमितता के साथ कार्य करने के लिए, उच्च न्यायालय उस मामले में ऐसा आदेश दे सकता है जैसा वह उचित समझे: बशर्ते कि उच्च न्यायालय , इस धारा के तहत, किसी मुकदमे या अन्य कार्यवाही के दौरान किए गए किसी भी आदेश, या किसी मुद्दे पर निर्णय लेने वाले किसी भी आदेश को बदल या सुरक्षित नहीं करेगा, सिवाय इसके कि आदेश, यदि वह पार्टी के पक्ष में किया गया हो, पुनरीक्षण के लिए आवेदन करने वाली पार्टी ने अंततः मुकदमे या अन्य कार्यवाही का निपटारा कर दिया होगा।
>
> XXX XXX XXX

(3) एक पुनरीक्षण अदालत के समक्ष मुकदमे या अन्य कार्यवाही पर रोक के रूप में प्रयोग नही किया जायेगा सिवाय इसके कि जहां ऐसा मुकदमा या अन्य कार्यवाही उच्च न्यायालय द्वारा रोक दी गई हो। इस प्रावधान को पढ़ने से पता चलेगा कि, 1999 के बाद, सीपीसी की धारा 115 के तहत दायर पुनरीक्षण याचिकाएं अंतरिम आदेशों के खिलाफ सुनवाई योग्य नहीं हैं।

7) अन्यथा भी, यह सुस्थापित है कि धारा 115 सीपीसी के तहत पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग केवल क्षेत्राधिकार संबंधी त्रुटियों को ठीक करने के लिए किया जाना है। यह डीएलएफ हाउसिंग एंड

कंस्ट्रक्शन कंपनी प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली बनाम सरूप सिंह और अन्य (1970) 2 एससीआर 368 में सुस्थापित हो चुका है जिसमें न्यायालय ने कहा कि:

> "इस प्रकार यह स्थिति दृढ़ता से स्थापित होती प्रतीत होती है कि धारा 115 के तहत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते समय , उच्च न्यायालय तथ्यों की त्रुटियों को ठीक करने के लिए सक्षम नहीं है, भले ही त्रुटियां कितनी भी गंभीर या कानूनी गलतियाँ क्यों न हों, तब तक विवाद को स्वयं आजमाना जब तक कि उक्त त्रुटियाँ न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से संबंधित न हों। इस खंड के खंड (ए) और (बी) स्पष्ट रूप से वर्तमान मामले को कवर नहीं करते हैं। यह तर्क नहीं दिया गया था, क्योंकि वास्तव में यह तर्क देना संभव नहीं था, कि विद्वान अतिरिक्त जिला न्यायाधीश ने या तो उस क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया था जो कानून द्वारा उनके पास निहित नहीं था या कार्यवाही के आदेश को दर्ज करने में वह अपने में निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने में विफल रहे थे। विचाराधीन समझौते के विशिष्ट निष्पादन के लिए कार्यवाही में उच्च न्यायालय द्वारा अपील का निर्णय होने तक संदर्भ के तहत रोक लगाई जाएगी। खंड (सी) भी मौजूदा मामले पर लागू नहीं होता प्रतीत होता है। इस खंड में प्रयुक्त शब्द "अवैध रूप से" और "महत्वपूर्ण अनियमितता के साथ" तथ्य या कानून की त्रुटियों को कवर नहीं करते हैं; इनमें निर्णय का उल्लेख नहीं है, बल्कि निर्णय लेने के तरीके का उल्लेख है। इस खंड द्वारा विचार की गई त्रुटियां, हमारे विचार में, या तो कानून के कुछ प्रावधानों के उल्लंघन से संबंधित हो सकती हैं या अंतिम निर्णय को प्रभावित करने वाली प्रक्रिया के भौतिक दोषों से संबंधित हो सकती हैं, न कि निर्धारित औपचारिकताओं के अनुपालन के बाद तथ्य या कानून की त्रुटियों से संबंधित हो सकती हैं। साथ। ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि उच्च न्यायालय ने संहिता की धारा 115 के तहत अपनी शक्ति पर लगाई गई सीमा पर ध्यान दिया है। केवल इसलिए कि यदि उच्च न्यायालय ने शुरू में मामले को निपटाया होता, तो अपील के निर्णय तक संदर्भ कार्यवाही पर रोक जारी रखने के सवाल पर एक अलग निष्कर्ष पर पहुंचने की इच्छा होती, धारा 115 के तहत पुनरीक्षण पर हस्तक्षेप को शायद ही उचित ठहराया जा सकता है। संहिता, जब इस प्रश्न से निपटने के तरीके में विद्वान अतिरिक्त जिला न्यायाधीश द्वारा कोई अवैधता या भौतिक अनियमितता नहीं की गई थी। हमें ऐसा लगता है कि इस मामले में उच्च न्यायालय ने पुनरीक्षण को वस्तुतः ऐसे माना जैसे कि यह एक अपील थी।" पृष्ठ 373 पर।

8) उत्तरदाताओं की ओर से उपस्थित विद्वान वकील ने हमारे सामने बहस की और फैसले का समर्थन करने का प्रयास किया। उन्होंने दोराब कैवासजी वार्डेनव्स के फैसले का हवाला दिया। कूमी सोराब वार्डन और अन्य (1990) 2 एससीसी 117। इस फैसले का पैरा 16 यहां नीचे दिया गया है:

> "16. इस प्रकार अंतःविषय अनिवार्य निषेधाज्ञा की राहत आम तौर पर अंतिम गैर–प्रतिवादित स्थिति की यथास्थिति को बनाए रखने या बहाल करने के लिए दी जाती है, जो लंबित विवाद से पहले अंतिम सुनवाई तक होती है जब पूर्ण राहत दी जा सकती है या उन कृत्यों को पूर्ववत करने के लिए मजबूर किया जाता है जो किए गए हैं अवैध रूप से किया गया या शिकायत करने वाले पक्ष से जो गलत तरीके से लिया गया था उसकी बहाली। लेकिन चूँकि किसी ऐसे पक्ष को ऐसा निषेधाज्ञा देना जो मुकदमे में अपना

अधिकार स्थापित करने में विफल रहता है या विफल रहेगा, उस पक्ष के साथ बहुत बड़ा अन्याय या अपूरणीय क्षति हो सकती है जिसके विरुद्ध यह आदेश दिया गया था या वैकल्पिक रूप से उस पक्ष को इसे न देना जो सफल होता है या सफल होने पर समान रूप से बड़ा अन्याय या अपूरणीय क्षति हो सकती है, अदालतों ने कुछ दिशानिर्देश निर्गत किए हैं। साधारणतः यह दिशानिर्देश हैं:–

(1) वादी के पास मुकदमे के लिए एक मजबूत मामला है। अर्थात्, यह प्रथम दृष्टया मामले की तुलना में उच्च मानक का होगा जो आमतौर पर निषेधात्मक निषेधाज्ञा के लिए आवश्यक होता है।

(2) अपूरणीय या गंभीर क्षति को रोकना आवश्यक है जिसकी भरपाई आम तौर पर पैसे के रूप में नहीं की जा सकती।

(3) सुविधा का संतुलन ऐसी राहत चाहने वाले के पक्ष में है। यह निर्णय यह भी स्पष्ट करता है कि जब अंतरिम स्तर में एक अनिवार्य निषेधाज्ञा दी जाती है तो केवल प्रथम दृष्टया मामला ही नहीं बनता है। उपर्युक्त वैधानिक प्रावधानों या निर्णयों में से किसी को भी न तो विज्ञापित किया गया है और न ही आक्षेपित निर्णय द्वारा उस पर ध्यान दिया गया है।

9. अतः हम विवादित फैसले को रद्द करते हैं और निचली अदालतों के फैसले को बहाल करते हैं।

10. चूंकि दायर किया गया मुकदमा धारा 6 का मुकदमा है जो अपने आप में एक सारांश कार्यवाही है, ट्रायल कोर्ट को आज से छह महीने की अवधि के भीतर मुकदमे का निपटारा करने का प्रयास करना चाहिए।

11. उपरोक्त शर्तों के तहत अपील स्वीकार की जाती है।

Translated/Vetted by :
Alok Sharma
Addl. Distt. Judge
Saharanpur